स्टील अथॉरिटी ऑफ इंडिया लिमिटेड

बनाम

जे.सी. बुधराजा, सरकारी एवं खनन ठेकेदार

1 सितंबर, 1999

[डी.पी. वाधवा और एम.बी. शाह, न्यायमूर्तिगण]

मध्यस्थता अधिनियम, 1940: धारा 30

कदाचार - क्षेत्राधिकार संबंधी त्रुटि - संविदा में यह शर्त थी कि कार्यस्थल सौंपने में देरी के लिए कोई दावा मान्य नहीं होगा। संविदा में केवल इस प्रकार के विलंब की स्थिति में कार्य पूरा करने के लिए समय विस्तार का प्रावधान था। इस निषेध के बावजूद, कार्यस्थल सौंपने में विलंब के कारण हुए नुकसान के लिए मुआवज़ा दिया गया। अभिनिर्धारित: मध्यस्थ को संविदा की सीमाओं के भीतर कार्य करना होता है और वह अपने क्षेत्राधिकार का उल्लंघन नहीं कर सकता। मध्यस्थ ने ऐसा किया है या नहीं, यह एक क्षेत्राधिकार संबंधी तथ्य होगा और न्यायालय द्वारा इसकी जांच की जानी आवश्यक है। मध्यस्थ को किसी दावे पर विचार करने का क्षेत्राधिकार हो सकता है, लेकिन संविदा की निषिद्ध शर्तों के संबंध में मुआवज़ा देने का क्षेत्राधिकार नहीं है। यदि वह ऐसा करता है, तो यह क्षेत्राधिकार संबंधी त्रुटि होगी। अतः उक्त पंचाट स्पष्ट रूप से अवैध है।

मध्यस्थता - विवाद – संदर्भ - सीमा अवधि - वाद हेतुक – उत्पत्ति - ठेकेदार ने 29-8-1979 को एक निश्चित राशि की मांग करते हुए नोटिस दिया - कंपनी की ओर से कोई प्रतिक्रिया और भुगतान नहीं हुआ - बाद के पूरक समझौते में ठेकेदार के हर्जाना प्राप्त करने के अधिकार को बरकरार नहीं रखा गया - इसके बजाय ठेकेदार ने उच्च दर पर निर्धारित समय के भीतर काम पूरा करने पर सहमति व्यक्त की - कंपनी ने [3.9.1983 को] पत्र लिखकर ठेकेदार के दावे को अस्वीकार कर दिया - ठेकेदार ने 29-8-1979 से 3 वर्षों के भीतर विवाद को मध्यस्थता के लिए संदर्भित करने की कोई कार्रवाई नहीं की - जब 1985 में दूसरे समझौते [दिनांक 20.12.1980] के संबंध में विवाद उत्पन्न हुआ, तो ठेकेदार ने मध्यस्थ की नियुक्ति के लिए नोटिस दिया और मामला मध्यस्थता के लिए संदर्भित किया गया - उस संदर्भ में ठेकेदार ने पहले समझौते से संबंधित विवाद उठाया - दिसंबर 1985 में मध्यस्थ को इस शर्त के साथ नियुक्त किया गया कि दावा परिसीमा अवधि द्वारा वर्जित था - अभिनिर्धारित: वाद

हेतुक 29-8-1979 को उत्पन्न हुआ, जो मांग की सूचना की तिथि है। अतः, दिसंबर 1985 में मध्यस्थ के समक्ष दावा परिसीमा अवधि द्वारा वर्जित है। 1983 में लिखा गया पत्र नया वाद उत्पन्न नहीं करेगा क्योंकि उस तिथि को राशि की वसूली के लिए वाद हेतुक परिसीमा अधिनियम की धारा 137 के तहत निर्धारित तीन वर्ष की अवधि द्वारा वर्जित था। परिसीमा अधिनियम की धारा 3 के तहत मध्यस्थ का यह कर्तव्य था कि वह दावे को अस्वीकार कर दे क्योंकि यह स्पष्ट रूप से परिसीमा द्वारा वर्जित था। परिसीमा अधिनियम, 1963, धारा 137 और धारा 3।

मध्यस्थता- पंचाट — युक्ति युक्त या अयुक्ति युक्त - ठेकेदार ने कार्यस्थल सौंपने में देरी के लिए हर्जाने का दावा किया - मध्यस्थ ने हर्जाना दिया और इसके कारण भी बताए – अभिनिर्धारित: कारणों से स्पष्ट रूप से पता चलता है कि यह पंचाट युक्ति युक्त है - इसलिए, न्यायालय इसकी जांच कर सकता है।

अपीलार्थी के पूर्ववर्ती ने उत्तरदाता के पूर्ववर्ती के साथ एक वन्यजीव अभयारण्य के भीतर कुछ निर्माण कार्य के लिए संविदा निष्पादित किया था। समझौते में यह शर्त थी कि पूरी जगह देने में देरी या उसे धीरे-धीरे देने के लिए कोई दावा मान्य नहीं होगा और ऐसे मामलों में अपीलार्थी केवल कार्य पूरा करने के लिए समय बढ़ाने के लिए बाध्य था।

उत्तरदाता ने 29-8-1979 को कार्यस्थल सौंपने में हुई देरी के कारण हुए नुकसान के लिए विवाद उठाया, लेकिन अपीलार्थी की ओर से कोई प्रतिक्रिया नहीं आई और न ही कोई भुगतान किया गया। इसके बाद अपीलार्थी और उत्तरदाता के बीच एक पूरक समझौता हुआ, जिसमें कहीं भी यह उल्लेख नहीं किया गया था कि नुकसान या क्षति के लिए भुगतान प्राप्त करने का उत्तरदाता का कथित अधिकार बरकरार रखा गया है। इसके विपरीत, उत्तरदाता ने दूसरे समझौते में निर्धारित समय के भीतर कुछ अधिक दर वसूल कर काम पूरा करने पर सहमति जताई थी। उत्तरदाता ने वाद-हेतुक उत्पन्न होने की तिथि, यानी 29-8-1979 से तीन वर्षों के भीतर उपरोक्त विवाद का कोई संदर्भ नहीं मांगा था। हालांकि, अपीलार्थी ने 1983 में एक पत्र लिखकर अपने द्वारा हुए नुकसान या क्षति के लिए उत्तरदाता के दावे को अस्वीकार कर दिया।

दूसरे समझौते के संबंध में विवाद उत्पन्न होने पर उत्तरदाता ने 2-12-1985 को एक मध्यस्थ नियुक्त करने का नोटिस दिया और मामला मध्यस्थता के लिए भेज दिया गया। उस संदर्भ में, उत्तरदाता ने पहले समझौते के तहत किए गए कार्य से संबंधित कुछ दावे उठाए।

अपीलार्थी ने मध्यस्थता की वैधता, स्वीकार्यता और औचित्य के संबंध में विशेष आपत्ति जताते हुए एक मध्यस्थ नियुक्त किया, साथ ही इस आधार पर भी कि दावा परिसीमा अवधि से बाधित था और यह संविदा की सामान्य शर्तों में अपवादित मामलों से संबंधित था।

मध्यस्थ ने प्रथम समझौते के तहत कार्यस्थल सौंपने में हुई देरी "के कारण" उत्तरदाता को हुए नुकसान के लिए हर्जाना देने का पंचाट दिया। इस पंचाट को न्यायालय का नियम बना दिया गया और इसके विरुद्ध दायर अपील को उच्च न्यायालय ने खारिज कर दिया। अतः यह अपील दायर की गई है।

अपीलार्थी की ओर से यह तर्क दिया गया कि मध्यस्थ द्वारा दिया गया पंचाट क्षेत्राधिकार से बाहर था और उत्तरदाता द्वारा किया गया दावा परिसीमा अवधि के कारण वर्जित था।

उत्तरदाता की ओर से यह तर्क दिया गया कि पंचाट अयुक्ति-युक्त था और इसलिए अधीनस्थ न्यायालयों ने इसमें हस्तक्षेप करने से उचित रूप से इनकार कर दिया।

अपील को स्वीकार करते हुए, न्यायालय ने

अभिनिर्धारित किया: 1.1. यह स्थापित विधि है कि मध्यस्थ को अपना अधिकार संविदा से प्राप्त होता है और यदि वह संविदा की स्पष्ट अवहेलना करता है, तो उसके द्वारा दिया गया पंचाट मनमाना होगा। इसके अलावा, मध्यस्थता अधिनियम, 1940 मध्यस्थ को मनमाने ढंग से या मनमौजी तरीके से कार्य करने की कोई शक्ति नहीं देता है। उसका अस्तित्व समझौते पर निर्भर करता है और उसका कार्य उक्त समझौते की सीमाओं के भीतर कार्य करना है।[165-जी- एच; 166- बी- सी]

1.2. यह पता लगाने के लिए कि क्या मध्यस्थ ने अपने क्षेत्राधिकार से बाहर जाकर पक्षों के बीच हुए समझौते की शर्तों का उल्लंघन किया है, समझौते की जांच करना आवश्यक है। यह सत्य है कि समझौते में किसी विशेष शर्त की व्याख्या मध्यस्थ के क्षेत्राधिकार में आती है। हालांकि, ऐसे मामलों में जहां संविदा की किसी शर्त की व्याख्या का प्रश्न नहीं है, बल्कि केवल उसे यथावत पढ़ने का प्रश्न है और फिर भी मध्यस्थ इसे अनदेखा करता है और समझौते में निषेध के बावजूद राशि प्रदान करता है, तो यह पंचाट मनमाना, मनमौजी और क्षेत्राधिकार से बाहर होगा। मध्यस्थ ने संविदा की शर्तों का उल्लंघन किया है या अपने क्षेत्राधिकार से बाहर गया है, यह तथ्यों पर निर्भर करेगा, जो हालांकि क्षेत्राधिकार संबंधी तथ्य होंगे और न्यायालय द्वारा इनकी जांच की जानी आवश्यक है। मध्यस्थ के पास दावे पर विचार करने का

क्षेत्राधिकार हो सकता है, फिर भी संविदा में निहित निषेध को देखते हुए विशिष्ट मदों के लिए पंचाट पारित करने का क्षेत्राधिकार नहीं हो सकता है, और ऐसे मामलों में, यह क्षेत्राधिकार संबंधी त्रुटि होगी। इस सीमित उद्देश्य के लिए संविदा की शर्तों का संदर्भ लेना अनिवार्य है। [166- एफ- एच; 167- ए]

कॉन्टिनेंटल कंस्ट्रक्शन कंपनी लिमिटेड बनाम मध्य प्रदेश राज्य [1988] 3 एससीसी 82; *न्यू इंडिया सिविल इरेक्टर्स (पी) लिमिटेड बनाम ऑयल एंड नेचुरल गैस कॉर्पोरेशन,* [1997] 11 एससीसी 75; *एच.पी. स्टेट इलेक्ट्रिसिटी बोर्ड बनाम आर.जे. शाह एंड कंपनी,* [1994] 4 एससीसी 214 और *एसोसिएटेड इंजीनियरिंग कंपनी बनाम आं.प्र. सरकार,* [1991] 4 एससीसी 93, ***पर अवलंबन किया गया।***

1.3. इस वाद में, मध्यस्थ द्वारा दिया गया पंचाट संविदा करने वाले पक्षों द्वारा सहमत शर्तों के विरुद्ध है और उस संविदा की शर्तों की जानबूझकर अवहेलना है जिससे मध्यस्थ को अपना अधिकार प्राप्त होता है। एकमात्र मध्यस्थ के रूप में उनकी नियुक्ति स्वयं सशर्त थी। इसके बावजूद उन्होंने पक्षों के बीच की शर्तों और प्रावधानों की अनदेखी की है। अतः, उक्त पंचाट स्पष्ट रूप से अवैध है। [168- जी- एच; 169- ए- बी]

2. विवाद को मध्यस्थ के पास भेजने का अधिकार 1979 में तब उत्पन्न हुआ जब ठेकेदार ने राशि की मांग करते हुए नोटिस दिया और अपीलार्थी की ओर से कोई जवाब नहीं आया और राशि का भुगतान नहीं किया गया। उक्त राशि की वसूली का कारण नोटिस की तारीख से उत्पन्न हुआ। ठेकेदार अनिश्चित काल तक प्रतीक्षा नहीं कर सकता और उसे परिसीमा अवधि के भीतर कार्रवाई करनी होगी। अतः, दिसंबर 1985 में मध्यस्थ के समक्ष दावा परिसीमा अवधि से बाधित था। 1983 में अपीलार्थी द्वारा उत्तरदाता के दावे को अस्वीकार करते हुए लिखा गया पत्र, जिसमें उसे हुए नुकसान या हानि का उल्लेख था, कोई नया वाद-हेतुक नहीं देता। उस तारीख को उक्त राशि की वसूली का कारण परिसीमा अधिनियम, 1963 के अनुच्छेद 137 के तहत निर्धारित तीन वर्ष की अवधि से बाधित था। परिसीमा अधिनियम की धारा 3 के तहत, मध्यस्थ का यह कर्तव्य था कि वह दावे को अस्वीकार कर दे क्योंकि यह स्पष्ट रूप से परिसीमा अवधि से बाधित था।

[171- जी- एच; 173- सी- डी]

उड़ीसा राज्य बनाम दामोदर दास, [1996] 2 एससीसी 216 और *पंचू गोपाल बोस बनाम कलकत्ता बंदरगाह के न्यासी बोर्ड,* [1993] 4 एससीसी 338, पर अवलंबन किया गया।

मेजर (सेवानिवृत्त) इंदर सिंह रेखी बनाम दिल्ली विकास प्राधिकरण, **[1988] 2 एससीसी 338 का संदर्भ दिया गया।**

3. क्षतिपूर्ति प्रदान करने के लिए पंचाट में विशेष रूप से उल्लिखित कारण स्पष्ट रूप से दर्शाते हैं कि मध्यस्थ ने एक युक्ति-युक्त पंचाट पारित किया है। इसलिए न्यायालय इसकी जांच कर सकता है।

दीवानी अपीलीय क्षेत्राधिकार: दीवानी अपील सं. 507/1992।

पटना उच्च न्यायालय के दिनांक 11.9.91 के पंचाट एवं आदेश से, विविध अपील सं. 621/1990 में।

अपीलार्थी की ओर से ध्रुव मेहता और एम.पी. विनोद उपस्थित हुए।

उत्तरदाता की ओर से जी.एल. सांघी और राज कुमार महता।

न्यायालय का निर्णय निम्नलिखित द्वारा सुनाया गया:

शाह, न्यायमूर्ति। यह अपील पटना उच्च न्यायालय, रांची न्यायपीठ द्वारा मध्यस्थता अधिनियम, 1940 (जिसे आगे "अधिनियम" कहा गया है) की धारा 39 (1) (vi) के तहत विविध अपील सं. 621/1990 में दिनांक 11 सितंबर, 1991 को पारित निर्णय और आदेश के विरुद्ध दायर की गई है। उच्च न्यायालय ने अपीलार्थी द्वारा दायर अपील को खारिज कर दिया और अधीनस्थ न्यायाधीश, प्रथम न्यायालय, चास द्वारा मध्यस्थता वाद सं. 28/1988 में दिनांक 2 अप्रैल, 1990 को पारित आदेश की पुष्टि की, जिसके द्वारा पंचाट को डिक्री की तिथि से 8 प्रतिशत प्रति वर्ष ब्याज के साथ न्यायालय का नियम बना दिया गया है।

यह निर्विवाद है कि राष्ट्रीय खनिज विकास निगम, जो स्टील अथॉरिटी ऑफ इंडिया लिमिटेड का पूर्ववर्ती था, ने 1.8.1977 को मेघा तबुरु लौह अयस्क परियोजना के लिए कुंडी में टेलिंग-कम-स्टोरेज जलाशय के निर्माण हेतु उत्तरदाता के साथ एक संविदा निष्पादित किया था। संविदा की शर्तों के अनुसार, कार्य दो वर्षों की अवधि में पूरा किया जाना था। इसी अवधि के दौरान, सार्वजनिक क्षेत्र की लौह और इस्पात कंपनियां (पुनर्गठन और विविध प्रावधान) अधिनियम, 1978 पारित हुआ और राष्ट्रीय खनिज विकास निगम के स्थान पर स्टील अथॉरिटी ऑफ इंडिया लिमिटेड नियोक्ता बन गया। इसके अलावा, ठेकेदार एन.सी. बुधराजा का भी निधन हो गया और उनके स्थान पर वर्तमान उत्तरदाता ने कार्यभार संभाला।

संविदा की दो वर्ष की अवधि समाप्त होने के बाद, 29 अगस्त, 1979 को उत्तरदाता ने कार्य स्थलों को सौंपने में देरी और संबंधित कारणों से लगभग 18 लाख रुपये के हर्जाने का दावा किया। 20 दिसंबर, 1980 को अपीलार्थी और उत्तरदाता के बीच उसी कार्य के लिए बढ़ी हुई दर पर एक पूरक समझौता किया गया। उक्त समझौते का प्रासंगिक भाग इस प्रकार है:

> "यह पूरक समझौता 20 दिसंबर, 1980 को स्टील अथॉरिटी ऑफ इंडिया लिमिटेड, जिसका पंजीकृत कार्यालय हिंदुस्तान टाइम्स हाउस, 18/20, कस्तूरबा गांधी मार्ग, नई दिल्ली-110 001 में है और जिसकी एक इकाई बोकारो स्टील प्लांट, बोकारो स्टील सिटी में स्थित है (जिसे आगे "नियोक्ता" कहा जाएगा, जिसमें इसके उत्तराधिकारी और वारिस भी शामिल होंगे), एक पक्ष के रूप में और मेसर्स एन.सी. बुधराजा गवर्नमेंट एंड माइनिंग कॉन्ट्रैक्टर, झारपाड़ा, डाकघर बुधेश्वरी कॉलोनी, भुवनेश्वर (जिसे आगे "ठेकेदार" कहा जाएगा), जिसमें इसके उत्तराधिकारी और वारिस भी शामिल होंगे, दूसरे पक्ष के बीच किया गया है।
>
> जबकि ठेकेदार ने मेघाहातुबुरु लौह अयस्क परियोजना से संबंधित "टेलिंग-कम-स्टोरेज जलाशय के निर्माण" के कार्य के संबंध में मेसर्स राष्ट्रीय खनिज विकास निगम लिमिटेड के साथ 1 अगस्त 1977 को एक समझौता किया था।
>
> और चूंकि राष्ट्रीय खनिज विकास निगम लिमिटेड की उक्त इकाई, सार्वजनिक क्षेत्र लौह एवं इस्पात कंपनियों (पुनर्गठन एवं विविध प्रावधान) अधिनियम, 1978 के लागू होने के बाद, इस्पात प्राधिकरण ऑफ इंडिया लिमिटेड को हस्तांतरित कर दी गई थी और इस्पात प्राधिकरण ऑफ इंडिया लिमिटेड के बोकारो इस्पात संयंत्र के लिए एक आबद्ध इकाई घोषित कर दी गई थी।
>
> और चूंकि उपर्युक्त पुनर्गठन अधिनियम की धारा 23 के प्रावधानों के अनुसार, मेसर्स राष्ट्रीय खनिज विकास निगम लिमिटेड और मेसर्स नेशनल मिनरल डेवलपमेंट अथॉरिटी लिमिटेड की मेघाहातुबुरु इकाई के बीच किया गया समझौता स्टील अथॉरिटी ऑफ इंडिया लिमिटेड के विरुद्ध या उसके पक्ष में पूर्णतः लागू और प्रभावी हो गया।
>
> और चूंकि ठेकेदार को अभी भी इस समझौते की अनुसूची में अधिक विस्तार से वर्णित कार्य का एक महत्वपूर्ण हिस्सा पूरा करना बाकी है।

और चूंकि ठेकेदार ने उक्त शेष कार्य को 12.3.80 तक पूरा करने पर सहमति व्यक्त की है, जिसकी अनुमानित मात्रा दस्तावेज़ 2 (घ) में निर्दिष्ट है, और यह कार्य नीचे उल्लिखित शर्तों और नियमों के अनुसार होगा।"

उक्त समझौते के खंड 3 और 4 इस प्रकार हैं:

"3. नियोक्ता द्वारा ठेकेदार को किए जाने वाले भुगतानों के बदले में, जैसा कि नीचे उल्लेख किया गया है, ठेकेदार एतद्द्वारा नियोक्ता के साथ संविदा के प्रावधानों के अनुरूप कार्यों का निर्माण, पूरा करने और रखरखाव करने का वचन देता है।

4. नियोक्ता एतद्द्वारा ठेकेदार को निर्माण, पूर्णता और रखरखाव के प्रतिफल के रूप में *संविदा में निर्धारित समय और तरीके से* संविदा मूल्य का भुगतान करने का वचन देता है।"

उपरोक्त तथ्य के बावजूद कि पूरक समझौता उसी कार्य के लिए बढ़ी हुई दर पर निष्पादित किया गया था, यह कहा गया है कि अपीलार्थी ने 3.9.1983 को पत्र लिखकर ठेकेदार द्वारा 29 अगस्त, 1979 के अपने पत्र में किए गए किसी भी नुकसान के लिए क्षतिपूर्ति के रूप में 18 लाख रुपये के दावे को अस्वीकार कर दिया।

इसके बाद, 20 दिसंबर, 1980 के दूसरे समझौते के संबंध में वर्ष 1985 में विवाद उत्पन्न हुआ और मामला मध्यस्थता के लिए भेजा गया। उस संदर्भ में, उत्तरदाता ने पहले समझौते के तहत किए गए कार्य से संबंधित कुछ दावे उठाए। 2 दिसंबर, 1985 को, अपीलार्थी ने आपत्ति उठाई कि दावा मध्यस्थों द्वारा तय नहीं किया जा सकता क्योंकि यह पिछले समझौते से संबंधित था। इसके बाद उत्तरदाता ने 2 दिसंबर, 1985 को अपीलार्थी को पहले समझौते के अनुसार एकमात्र मध्यस्थ नियुक्त करने के लिए नोटिस दिया। 10 दिसंबर, 1985 को, अपीलार्थी ने एकमात्र मध्यस्थ नियुक्त किया, "संदर्भ की वैधता, स्वीकार्यता और वैधता के संबंध में आपत्ति के साथ-साथ इस आधार पर भी कि दावा परिसीमा अवधि से बाधित था और यह संविदा की सामान्य शर्तों के अपवादित मामलों से संबंधित था"।

11 जुलाई, 1986 को मध्यस्थों ने 20.12.1980 के समझौते के तहत विवाद से संबंधित पंचाट दिया। पहले समझौते से संबंधित मद सं. 1 के 17 लाख रुपये और उससे अधिक के दावे के विरुद्ध मध्यस्थों ने 'शून्य' राशि प्रदान की; इस पंचाट को दिल्ली उच्च न्यायालय द्वारा न्यायालय का नियम बना दिया गया है।

इसी बीच, अपीलार्थी ने विविध मामला सं. 22/1987 दायर करके एकमात्र मध्यस्थ के क्षेत्राधिकार को चुनौती दी। अंततः, उच्च न्यायालय ने 22 अगस्त, 1988 को पुनरीक्षण आवेदन खारिज कर दिया। इसके बाद 18 नवंबर, 1988 को एकमात्र मध्यस्थ ने 11,26,296 रुपये की मूल राशि (अनिर्धारित क्षतिपूर्ति) और अतिरिक्त राशि के रूप में हर्जाना देने का पंचाट सुनाया। उपरोक्त मूलधन पर 29 अगस्त, 1979 से लेकर संदर्भ की तिथि, अर्थात् 15 दिसंबर, 1985 तक 12,06,000 रुपये ब्याज के रूप में देने का आदेश दिया गया था। मध्यस्थ ने पंचाट की तिथि से भुगतान की तिथि या डिक्री की तिथि, जो भी पहले हो, तक 17 प्रतिशत की दर से भविष्य का ब्याज भी देने का आदेश दिया। 2 अप्रैल, 1990 के आदेश द्वारा, माननीय उप न्यायाधीश ने पंचाट की तिथि से मूलधन या बकाया राशि पर वास्तविक भुगतान की तिथि तक 8 प्रतिशत की दर से ब्याज के भुगतान के लिए संशोधन के साथ पंचाट को न्यायालय का नियम बना दिया। उक्त पंचाट और डिक्री के विरुद्ध उच्च न्यायालय में दायर अपील भी खारिज कर दी गई। अतः यह अपील दायर की गई है।

सुनवाई के दौरान, अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि मध्यस्थ द्वारा पारित पंचाट

(क) क्षेत्राधिकार के बिना,

(ख) उत्तरदाता द्वारा किया गया दावा प्रथम दृष्टया परिसीमा अवधि से बाधित था, और

(ग) ब्याज का आवंटन पूरी तरह से अनुचित और अवैध है।

उत्तरदाता के विद्वान अधिवक्ता ने उच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेश का समर्थन किया। उन्होंने प्रस्तुत किया कि:

(1) पंचाट अयुक्ति-युक्त है। इसलिए, अधीनस्थ न्यायालयों ने हस्तक्षेप करने से उचित रूप से इनकार कर दिया।

(2) ठेकेदार द्वारा किया गया दावा परिसीमा अवधि के भीतर था या नहीं, यह प्रश्न मध्यस्थ द्वारा तय किया जाना आवश्यक था, और

(3) दावे की तारीख से संदर्भ की तारीख तक और उसके बाद ब्याज देने पर कोई रोक नहीं है।

इस विवाद का निर्णय करने के लिए, 18 नवंबर, 1988 के फैसले के महत्वपूर्ण भाग का संदर्भ लेना आवश्यक होगा, जो इस प्रकार है:

"दावेदार ने 18,10,014.48 रुपये की राशि का दावा प्रस्तुत किया है, साथ ही 29.8.79 से भुगतान की तिथि तक उसी राशि पर 30 प्रतिशत प्रति वर्ष की दर से ब्याज का भी दावा किया है।

दावा राशि पर 29.8.79 से 18.11.88 तक, यानी "पंचाट" की तिथि तक, उपरोक्त दर पर ब्याज की राशि 33,39,351.00 रुपये (तैंतीस लाख उनतालीस हजार तीन सौ इक्यावन रुपये मात्र) थी।

इस प्रकार, "पंचाट" की तिथि तक ब्याज सहित दावों की कुल राशि 51,49,365.48 रुपये (इक्यावन लाख उनतालीस हजार तीन सौ पैंस और अड़तालीस पैसे मात्र) बनती है।

दोनों पक्षों द्वारा प्रस्तुत और उन पर आधारित सभी दस्तावेजों की जांच करने और दोनों पक्षों द्वारा तथ्यात्मक और कानूनी रूप से दिए गए मौखिक और लिखित बयानों और तर्कों की श्रृंखला को ध्यान में रखते हुए, *मैं इस निष्कर्ष पर पहुंचा हूं कि दावेदार को निम्नलिखित कारणों से नुकसान हुआ है:-*

(क) कार्य स्थल सारंडा आरक्षित वन के वन्यजीव अभ्यारण्य में स्थित है। परियोजना अधिकारियों ने वन्यजीव अभ्यारण्य के अंदर कार्य करने के लिए वन विभाग से अनुमति प्राप्त करने की विभागीय औपचारिकताओं को पूरा किए बिना कार्य आदेश जारी किया।

(ख) परियोजना अधिकारियों को कार्य निष्पादन के लिए आवश्यक होने पर कार्य स्थल पर आदमी और यंत्र ले जाने के लिए वन विभाग से अनुमति प्राप्त नहीं हो सकी।

(ग) परियोजना अधिकारी कार्यस्थल पर झोपड़ियाँ बनाने के लिए वन विभाग से समय पर अनुमति प्राप्त नहीं कर सके और समय पर स्थल सौंप नहीं सके।

(घ) परियोजना प्राधिकरण कार्य आदेश जारी होने से पहले कार्य क्षेत्र से वनस्पति नहीं हटा सका।

(ड.) परियोजना अधिकारियों को मार्च 1979 तक वन्य अभयारण्य के अंदर विस्फोट कार्य और ड्रिलिंग एवं विस्फोट कार्य करने के लिए आवश्यक यंत्र और सामग्री के परिवहन हेतु वन विभाग से अनुमति प्राप्त नहीं हो सकी।

(च) दावेदार के वैध देय राशि के भुगतान में नौ वर्ष से अधिक की देरी।

उपरोक्त कारणों को दर्ज करने के बाद, मध्यस्थ ने दोनों पक्षों के दस्तावेजों, प्रस्तुतियों और तर्कों पर विचार करते हुए यह माना कि ठेकेदार स्टील अथॉरिटी ऑफ इंडिया लिमिटेड द्वारा मूलधन के रूप में 11,26,296 रुपये और 29 अगस्त, 1979 से 15 अगस्त, 1985 तक ब्याज के रूप में 12,06,000 रुपये, कुल मिलाकर 23,32,296 रुपये का भुगतान पाने का हकदार है। मध्यस्थ ने पंचाट की तिथि से भुगतान की तिथि या डिक्री की तिथि, जो भी पहले हो तक 11,26,296 रुपये की मूल राशि पर 17 प्रतिशत की दर से भविष्य का ब्याज भी प्रदान किया।

अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि पंचाट स्पष्ट है और मध्यस्थ ने वन विभाग से विभिन्न अनुमतियाँ प्राप्त करने में विभाग की विफलता के कारण क्षतिपूर्ति प्रदान की है। क्षतिपूर्ति प्रदान करने के लिए पंचाट में विशेष रूप से उल्लिखित कारण स्पष्ट रूप से दर्शाते हैं कि मध्यस्थ ने एक स्पष्ट पंचाट पारित किया है। उन्होंने संविदा की शर्तों की ओर इशारा करते हुए कहा कि यह स्पष्ट है कि मध्यस्थ ने उन मदों के लिए राशि प्रदान की है जिन पर संविदा में प्रतिबंध है और इस प्रकार उन्होंने अपने क्षेत्राधिकार से बाहर कार्य किया है। इस उद्देश्य के लिए, अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने उन शर्तों का उल्लेख किया जिनका उल्लेख विद्वान एकल न्यायाधीश और अधीनस्थ न्यायालय ने किया है। वे इस प्रकार हैं:

"खंड *25: कार्य बंद या स्थगित होने पर कोई दावा नहीं किया जा सकता-*

यदि इन निविदा दस्तावेजों में उल्लिखित कार्य या उसका कोई भाग निगम के समग्र हित में या किसी अन्य कारण से स्थगित कर दिया जाता है या रद्द कर दिया जाता है, तो सफल निविदाकर्ता का निगम के विरुद्ध कोई दावा नहीं होगा। इस वाद में निगम का पंचाट अंतिम और ठेकेदार पर बाध्यकारी होगा।

खंड 32: कार्य निष्पादन हेतु स्थल:

कार्य ठेका मिलते ही कार्य निष्पादन हेतु स्थल उपलब्ध करा दिया जाएगा। यदि निगम के लिए कार्य ठेके के समय संपूर्ण स्थल उपलब्ध कराना संभव न हो,

तो ठेकेदार को तदनुसार अपना कार्य कार्यक्रम व्यवस्थित करना होगा। कार्य ठेके के समय संपूर्ण स्थल न देने तथा धीरे-धीरे स्थल उपलब्ध कराने के संबंध में किसी भी प्रकार का दावा स्वीकार्य नहीं होगा।

खंड 39:(अपरिहार्य/अप्रत्याशित घटना):

यदि संविदा के प्रावधानों का पालन करने में कोई विफलता या चूक ईश्वरीय घटना के कारण होती है, जिसमें आग, बाढ़, भूकंप, तूफान या कोई अन्य आपदा जैसी प्राकृतिक आपदाएँ शामिल हैं, या नागरिक हड़ताल, *सरकार के किसी कानून या नियम का अनुपालन,* तालाबंदी और हड़ताल*, या निगम या ठेकेदार के नियंत्रण से परे किसी राजनीतिक या अन्य कारणों से होती है,* जिसमें घोषित या अघोषित युद्ध, गृहयुद्ध या विद्रोह की स्थिति शामिल है, *तो निगम और ठेकेदार के बीच कोई दावा करने का अधिकार नहीं होगा।*

खंड 5 (iv): संविदा की सामान्य शर्तें (संविदा में शामिल कार्य को पूरा करने का समय):

यदि निगम कार्य निष्पादन के लिए आवश्यक भूमि का कब्ज़ा ठेकेदार को सौंपने में विफल रहता है या इसमें देरी करता है, या आवश्यक नक्शे, निर्देश देने में विफल रहता है, या निगम द्वारा किसी अन्य कारण से कोई अन्य देरी होती है, तो इससे संविदा पर किसी भी प्रकार से कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा, न ही यह संविदा को अमान्य करेगा, न ही इसके स्वरूप को बदलेगा, और न ही ठेकेदार इसके लिए किसी भी प्रकार की क्षतिपूर्ति या मुआवजे का हकदार होगा, बशर्ते कि निगम कार्य पूर्ण करने की समय सीमा को उतनी अवधि तक बढ़ा सकता है जितनी वह आवश्यक और उचित समझे।

माननीय उप न्यायाधीश और उच्च न्यायालय के समक्ष यह निवेदन किया गया कि संविदा में निर्धारित उपरोक्त शर्तों के मद्देनजर, जिनमें हर्जाना या मुआवजा देने पर रोक लगाई गई है, मध्यस्थ के लिए वन विभाग से कानून या नियमों के तहत आवश्यक विभिन्न अनुमतियां प्राप्त न करने या प्राप्त करने में देरी के कारण हुए कथित नुकसान के लिए हर्जाना देना उचित नहीं था।

विषय: मध्यस्थ के क्षेत्राधिकार का अभाव

उपरोक्त उद्धृत पंचाट से यह स्पष्ट है कि वन विभाग से अनुमति प्राप्त करने में हुई देरी के लिए मध्यस्थ द्वारा क्षतिपूर्ति प्रदान की गई है:

(क) वन्यजीव अभ्यारण्य के भीतर कार्य करने के लिए;

(ख) जंगल में कार्यस्थल पर व्यक्ति और यंत्र ले जाना;

(ग) कार्यस्थल पर झोपड़ियाँ बनाने और समय पर कार्यस्थल सौंपने में विफलता के लिए;

(घ) कार्य आदेश जारी होने से पहले कार्य क्षेत्र से वन वनस्पतियों को हटाने में विफलता; और

(ड.) मार्च, 1979 तक वन्यजीव अभयारण्य के अंदर विस्फोट संचालन के लिए आवश्यक यंत्र और सामग्री के परिवहन और ड्रिलिंग और विस्फोट कार्य को निष्पादित करने के लिए।

समझौते के खंड 32 में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि कार्य सौंपते समय पूरा स्थल न देने और धीरे-धीरे स्थल देने के संबंध में किसी भी प्रकार का दावा मान्य नहीं होगा और ठेकेदार को तदनुसार अपना कार्य कार्यक्रम व्यवस्थित करना होगा। खंड 39 में आगे कहा गया है कि संविदा के प्रावधानों का पालन करने में कोई भी विफलता या चूक निगम और ठेकेदार के बीच किसी भी प्रकार के दावे का आधार नहीं बनेगी, यदि ऐसी विफलता या चूक सरकार के किसी क़ानून या नियमन के अनुपालन या निगम या ठेकेदार के नियंत्रण से परे अन्य कारणों से उत्पन्न होती है। वन्यजीव अभयारण्य में कार्य करने के लिए वन विभाग से अनुमति प्राप्त करना वैधानिक नियमों पर निर्भर करता है। संविदा की सामान्य शर्तों के खंड (6) में यह भी प्रावधान है कि निगम द्वारा ठेकेदार को कार्य निष्पादन के लिए आवश्यक भूमि का कब्ज़ा सौंपने में विफलता या देरी या निगम द्वारा किसी अन्य कारण से की गई कोई भी देरी ठेकेदार को क्षति या मुआवजे का हकदार नहीं बनाएगी; ऐसे मामलों में, निगम का एकमात्र कर्तव्य कार्य पूरा करने के लिए आवश्यक समय को उतनी अवधि तक बढ़ाना था, जितनी वह आवश्यक और उचित समझे। ये शर्तें स्पष्ट रूप से उल्लिखित उल्लंघनों के लिए क्षतिपूर्ति के दावे को स्वीकार करने से रोकती हैं। मध्यस्थ के लिए उक्त शर्तों की अनदेखी करना उचित नहीं था, जो संविदा के पक्षों पर बाध्यकारी हैं। इनकी अनदेखी करके, उसने अपने क्षेत्राधिकार से बाहर कार्य किया है। यह स्थापित कानून है कि मध्यस्थ को संविदा से अधिकार प्राप्त होता है और यदि

वह संविदा की स्पष्ट अवहेलना करता है, तो उसके द्वारा दिया गया पंचाट मनमाना होगा। संविदा से यह जानबूझकर विचलन न केवल उसके अधिकार की स्पष्ट अवहेलना या कदाचार है, बल्कि यह दुर्भावनापूर्ण कार्रवाई के समान भी हो सकता है। वर्तमान मामले में, यह स्पष्ट है कि कथित चूक या कार्यस्थल सौंपने में देरी के लिए 11 लाख रुपये और उससे अधिक की क्षतिपूर्ति देना, स्पष्ट रूप से संविदा की शर्तों के विरुद्ध है।

इसके अलावा, मध्यस्थता अधिनियम मध्यस्थ को मनमाने ढंग से या सनकी तरीके से कार्य करने का कोई अधिकार नहीं देता है। उसका अस्तित्व समझौते पर निर्भर करता है और उसका कार्य उक्त समझौते की सीमाओं के भीतर कार्य करना है। *कॉन्टिनेंटल कंस्ट्रक्शन कंपनी लिमिटेड बनाम मध्य प्रदेश राज्य*, [1988] 3 एससीसी 82 के मामले में, इस न्यायालय ने संविदा की उन शर्तों पर विचार किया जिनमें यह निर्धारित था कि ठेकेदार को सामग्री की कीमतों में वृद्धि और श्रम शुल्क में भी संविदा में निर्धारित दरों पर वृद्धि के बावजूद काम पूरा करना था। इसके बावजूद, मध्यस्थ ने ठेकेदार के दावे को आंशिक रूप से स्वीकार कर लिया। न्यायालय ने इसे रद्द कर दिया और इसके विरुद्ध दायर अपील को इस न्यायालय ने यह कहते हुए खारिज कर दिया कि ठेकेदार को सामग्री और श्रम की कीमतों में वृद्धि के लिए अतिरिक्त लागत का दावा करने का अधिकार नहीं था और मध्यस्थ ने अतिरिक्त दावे की वैधता के संबंध में विशिष्ट आपत्ति पर निर्णय न लेकर कदाचार किया। उस मामले में, न्यायालय ने विभिन्न पंचाटों का उल्लेख किया और संक्षेप में टिप्पणी की:

> "यदि कानून का कोई विशिष्ट प्रश्न संदर्भित नहीं किया जाता है, तो उस प्रश्न पर मध्यस्थ का पंचाट अंतिम नहीं होता, चाहे वह प्रश्न उसके क्षेत्राधिकार में ही क्यों न हो और वास्तव में उसके लिए उस प्रश्न का निर्णय करना कितना ही आवश्यक क्यों न हो। मध्यस्थ सुलहकर्ता नहीं होता और वह कानून की अनदेखी या उसका दुरुपयोग करके वह निर्णय नहीं ले सकता जो उसे उचित और तर्कसंगत लगता है। मध्यस्थ पक्षों द्वारा अपने विवादों का कानून के अनुसार निर्णय लेने के लिए चुना गया एक न्यायाधिकरण होता है और इसलिए वह कानून का पालन करने और उसे लागू करने के लिए बाध्य होता है, और यदि वह ऐसा नहीं करता है तो न्यायालय द्वारा उसे सुधारा जा सकता है, बशर्ते उसकी त्रुटि पंचाट में स्पष्ट रूप से दिखाई दे।"

यह दोहराया जाना आवश्यक है कि यह पता लगाने के लिए कि क्या मध्यस्थ ने अपने क्षेत्राधिकार से बाहर जाकर पक्षों के बीच हुए समझौते की शर्तों का उल्लंघन किया है,

समझौते की जांच करना आवश्यक है। यह सत्य है कि समझौते में किसी विशेष शर्त की व्याख्या मध्यस्थ के क्षेत्राधिकार में आती है। हालांकि, ऐसे मामलों में जहां संविदा की किसी शर्त की व्याख्या का प्रश्न नहीं है, बल्कि केवल उसे यथावत पढ़ने का प्रश्न है और फिर भी मध्यस्थ इसे अनदेखा करते हुए समझौते में निषेध के बावजूद राशि प्रदान करता है, तो यह पंचाट मनमाना, अनुचित और क्षेत्राधिकार से बाहर होगा। मध्यस्थ ने संविदा की शर्तों से बाहर जाकर कार्य किया है या अपने क्षेत्राधिकार से बाहर गया है, यह तथ्यों पर निर्भर करेगा, जो हालांकि क्षेत्राधिकार से संबंधित तथ्य होंगे और न्यायालय द्वारा इनकी जांच की जानी आवश्यक है। मध्यस्थ को दावे पर विचार करने का अधिकार हो सकता है, फिर भी संविदा में निहित निषेध 'ए' के मद्देनजर विशिष्ट मदों के लिए पंचाट पारित करने का अधिकार उसके पास नहीं हो सकता है, और ऐसे मामलों में, यह अधिकार संबंधी त्रुटि होगी। इस सीमित उद्देश्य के लिए संविदा की शर्तों का संदर्भ देना अनिवार्य है। इसी तरह के प्रश्न से निपटते हुए, इस न्यायालय ने *न्यू इंडिया सिविल इरेक्टर्स (पी) लिमिटेड बनाम ऑयल एंड नेचुरल गैस कॉर्पोरेशन,* [1997] 11 एससीसी 75 में यह निर्णय दिया:

> "यह सर्वविदित है कि मध्यस्थ, समझौते के अंतर्गत गठित होने के कारण, समझौते की सीमाओं के भीतर ही कार्य करेगा और उससे बाहर नहीं जा सकता। विशेष रूप से, वह ऐसी कोई राशि प्रदान नहीं कर सकता जो समझौते की शर्तों द्वारा वर्जित या निषिद्ध हो। इस वाद में, पक्षों के बीच हुए समझौते में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि निर्मित क्षेत्र को मापते समय बालकनी क्षेत्र को शामिल नहीं किया जाना चाहिए। मध्यस्थ उक्त प्रावधान के विपरीत कार्य नहीं कर सकता था और उस मद के आधार पर अपीलार्थी को कोई राशि प्रदान नहीं कर सकता था।"

हालांकि, उत्तरदाता के विद्वान अधिवक्ता ने यह तर्क दिया कि पंचाट में कोई युक्ति-स्पष्टीकरण नहीं दिया गया है, इसलिए विद्वान उप-न्यायाधीश और उच्च न्यायालय ने पंचाट की जांच करने या उसमें हस्तक्षेप करने से सही ही इनकार किया है। हमारी राय में, यह तर्क निराधार है। यह स्पष्ट है कि मध्यस्थ ने पिछले अनुच्छेद में उल्लिखित कारणों से हुए नुकसान के लिए 11,26,296 रुपये का मुआवजा दिया है। ये कारण केवल वन विभाग से अनुमति न मिलने या अनुमति मिलने में देरी से संबंधित थे, क्योंकि कार्य स्थल सारंडा आरक्षित वन के वन्यजीव अभयारण्य में स्थित था। मध्यस्थ ने अपने पंचाट में स्पष्ट रूप से कहा है, "*मैं आश्वस्त हूं कि दावेदार को निम्नलिखित कारणों से नुकसान हुआ है*" और इसके बाद कारणों

को दर्ज किया गया है। इसलिए, यह नहीं कहा जा सकता कि पंचाट में कोई स्पष्टीकरण नहीं दिया गया है।

इसके अलावा, भले ही ऐसे कारण दर्ज न किए गए हों, फिर भी मध्यस्थ द्वारा निषिद्ध वस्तुओं के लिए दावा स्वीकार नहीं किया जा सकता था। पक्षों के बीच हुए समझौते में ऐसे दावों को उठाने पर स्पष्ट रोक है। इसलिए मध्यस्थ का निर्णय क्षेत्राधिकार से बाहर है। इस पहलू पर इस न्यायालय द्वारा भी विचार किया गया है। *हिमाचल प्रदेश राज्य विद्युत बोर्ड बनाम आर.जे. शाह एंड कंपनी* [1999] 4 एससीसी 214. कंडिका 26 में न्यायालय ने निम्नानुसार कहा:

> "यह निर्धारित करने के लिए कि क्या मध्यस्थ ने अपने क्षेत्राधिकार से बाहर जाकर कार्य किया है, यह देखना आवश्यक है कि क्या दावेदार मध्यस्थ के समक्ष कोई विशेष विवाद या दावा उठा सकता था। यदि उत्तर सकारात्मक है, तो यह स्पष्ट है कि मध्यस्थ को ऐसे दावे पर विचार करने का क्षेत्राधिकार प्राप्त होगा। दूसरी ओर, यदि मध्यस्थता खंड या संविदा में कोई विशिष्ट शर्त या कानून मध्यस्थ को दावेदार द्वारा उठाए गए विवाद पर निर्णय लेने या न्याय करने की अनुमति नहीं देता है या किसी विशेष विवाद या दावे को उठाने पर कोई विशिष्ट रोक है, तो मध्यस्थ द्वारा इस संबंध में दिया गया कोई भी निर्णय स्पष्ट रूप से क्षेत्राधिकार से बाहर होगा।"

न्यायालय ने आगे कहा कि यह पता लगाने के लिए कि क्या मध्यस्थ ने अपने क्षेत्राधिकार से बाहर जाकर कार्य किया है, न्यायालय को संविदा सहित कुछ दस्तावेजों के साथ-साथ विवाद के संदर्भ को भी देखना पड़ सकता है, ताकि यह देखा जा सके कि क्या मध्यस्थ के पास मध्यस्थता कार्यवाही में किए गए दावे पर निर्णय लेने का क्षेत्राधिकार है।

इसके अलावा, संविदा में इसी तरह की शर्तों से निपटते हुए, जैसे कि उसमें दिए गए प्रावधानों के अलावा मूल्य वृद्धि के लिए कोई दावा स्वीकार नहीं किया जाएगा और "ठेकेदार को प्रश्नों के चयन में परिवर्तन के कारण किसी भी अतिरिक्त दर का हकदार नहीं होगा", इस न्यायालय ने *एसोसिएटेड इंजीनियरिंग कंपनी बनाम आंध्र प्रदेश सरकार और एक अन्य* [1991] 4 एससीसी 93 में यह पाया गया कि उसमें उल्लिखित चार दावे संविदा के तहत देय नहीं थे, वास्तव में, संविदा ने ऐसे भुगतान को प्रतिबंधित किया था। न्यायालय ने कहा, "यह निष्कर्ष संविदा की व्याख्या से नहीं, बल्कि केवल संविदा को देखकर निकाला गया है।" न्यायालय ने आगे कहा कि मध्यस्थ मनमाने ढंग से, तर्कहीनता से, मनमौजीपन से या संविदा से स्वतंत्र

रूप से कार्य नहीं कर सकता; उसका एकमात्र कार्य संविदा की शर्तों के अनुसार मध्यस्थता करना है। न्यायालय ने आगे अभिनिर्धारित किया:

> "जो मध्यस्थ संविदा की स्पष्ट अवहेलना करता है, वह क्षेत्राधिकार से बाहर कार्य करता है। उसका अधिकार संविदा से प्राप्त होता है और मध्यस्थता अधिनियम द्वारा शासित होता है, जिसमें एजेंसी कानून की एक विशेष शाखा से व्युत्पन्न सिद्धांत समाहित हैं (देखें मस्टिल और बॉयड की वाणिज्यिक मध्यस्थता, द्वितीय संस्करण, पृष्ठ 641)। यदि वह अपने पंचाट द्वारा उन मामलों पर निर्णय लेता है जिन्हें समझौते द्वारा वर्जित किया गया है, तो वह कदाचार करता है (देखें हल्सबरी के इंग्लैंड के कानून, खंड II, चतुर्थ संस्करण, कंडिका 622)। संविदा से जानबूझकर विचलन न केवल उसके अधिकार की स्पष्ट अवहेलना या उसकी ओर से कदाचार है, बल्कि यह दुर्भावनापूर्ण कार्रवाई के समान भी हो सकता है। कानून या संविदा के प्रावधानों की जानबूझकर अवहेलना, जिससे उसे अपना अधिकार प्राप्त हुआ है, पंचाट को अमान्य कर देती है।"

उपर्युक्त स्थापित कानून के आलोक में, मध्यस्थ द्वारा दिया गया पंचाट संविदा निष्पादित करने वाले पक्षों द्वारा सहमत शर्तों के विरुद्ध है और उस संविदा की शर्तों की जानबूझकर अवहेलना है जिसके आधार पर मध्यस्थ को अपना अधिकार प्राप्त होता है। एकमात्र मध्यस्थ के रूप में उनकी नियुक्ति सशर्त थी और उन्हें सूचित किया गया था कि यह नियुक्ति "संदर्भ की वैधता, स्वीकार्यता और वैधता के संबंध में कुछ आपत्तियों के साथ" की गई है, साथ ही इस आधार पर भी कि दावा परिसीमा अवधि से वर्जित है और यह संविदा की सामान्य शर्तों के अपवादों से संबंधित है। इसके बावजूद उन्होंने पक्षों के बीच की शर्तों और प्रावधानों की अनदेखी की है। अतः, उक्त पंचाट स्पष्ट रूप से अवैध है।

विषय: परिसीमा

हमारा अगला प्रश्न परिसीमा अवधि से संबंधित है। परिसीमा अवधि पर पक्षों के बीच मध्यस्थता खंड के आधार पर विचार किया जाना आवश्यक है, जो इस प्रकार है:

"इस संविदा के पक्षकारों के बीच किसी भी समय उत्पन्न होने वाले सभी विवाद या मतभेद, चाहे वे कार्यों या उनके निष्पादन, अर्थ, संचालन या प्रभाव से संबंधित हों, या पक्षकारों के अधिकारों या दायित्वों से संबंधित हों, या उनसे उत्पन्न हों या उनसे संबंधित हों, चाहे संविदा के दौरान या उसके पूरा होने के बाद, या संविदा के निर्धारण, समाप्ति या उल्लंघन से पहले या उसके बाद (उन मामलों को छोड़कर जिनमें किसी व्यक्ति का निर्णय संविदा द्वारा

अंतिम और बाध्यकारी घोषित किया गया है), संविदा के किसी भी पक्ष द्वारा दूसरे पक्ष को और निगम के प्रबंध निदेशक/अध्यक्ष (जो नियुक्ति प्राधिकारी होंगे) को लिखित सूचना देने के बाद, एक मध्यस्थ को निर्णयन हेतु भेजे जाएंगे, जिसकी नियुक्ति इसके बाद की जाएगी।

नियुक्ति प्राधिकारी नोटिस प्राप्त होने के तीस दिनों के भीतर ठेकेदार के कार्य से सीधे तौर पर संबंधित न होने वाले तीन व्यक्तियों के नामों का एक पैनल भेजेगा। ठेकेदार नामों की प्राप्ति के तीस दिनों के भीतर नामित व्यक्तियों में से किसी एक को एकमात्र मध्यस्थ के रूप में नियुक्त करने के लिए चुनेगा। यदि ठेकेदार पैनल से नाम चुनने और 30 दिनों के भीतर सूचित करने में विफल रहता है, तो नियुक्ति प्राधिकारी पैनल में से किसी एक को एकमात्र मध्यस्थ नियुक्त करेगा।

यदि नियुक्ति प्राधिकारी निर्धारित अवधि के भीतर ठेकेदार को उपर्युक्त तीन नामों का पैनल भेजने में विफल रहता है, तो ठेकेदार नियुक्ति प्राधिकारी को ऐसे तीन व्यक्तियों के नामों का पैनल भेजेगा जो उस संगठन से असंबद्ध हों जिसके द्वारा कार्य निष्पादित किया जा रहा है। नियुक्ति प्राधिकारी उपर्युक्त नामों की प्राप्ति पर नामित व्यक्तियों में से किसी एक का चयन करके उसे एकमात्र मध्यस्थ नियुक्त करेगा। यदि नियुक्ति प्राधिकारी पैनल की प्राप्ति के 30 दिनों के भीतर व्यक्ति का चयन करके उसे एकमात्र मध्यस्थ नियुक्त करने में विफल रहता है और ठेकेदार को इसकी सूचना नहीं देता है, तो ठेकेदार भारतीय मध्यस्थता अधिनियम, 1940 और उसके किसी भी वैधानिक संशोधन के प्रावधानों का सहारा लेने का हकदार होगा।"

उपर्युक्त मध्यस्थता खंड को देखते हुए, यद्यपि ठेकेदार द्वारा किया गया दावा समय-बाधित था, फिर भी विवाद को मध्यस्थ के पास भेजा जाना आवश्यक था। हालांकि, यह संदर्भ इस शर्त के अधीन था कि यह परिसीमा अवधि से बाधित था। इस संदर्भ में, अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि यह स्थापित कानून है कि परिसीमा अधिनियम, 1963 के अनुच्छेद 137 में दिए गए प्रावधान के अनुसार, धारा 20 के तहत आवेदन या मध्यस्थ की नियुक्ति के लिए नोटिस 'वाद-हेतुक' उत्पन्न होने की तिथि से तीन वर्ष के भीतर दाखिल किया जाना चाहिए। ठेकेदार द्वारा दिसंबर 1985 में दाखिल किया गया आवेदन स्पष्ट रूप से समय-बाधित था क्योंकि राशि की वसूली का कारण, ठेकेदार के अनुसार, अगस्त 1979 में उत्पन्न हुआ था जब उसने कार्यस्थलों को सौंपने में देरी के कारण हुए नुकसान के लिए कथित क्षतिपूर्ति की मांग की थी। उन्होंने आगे प्रस्तुत किया कि वर्तमान मामले में, वर्ष 1980 में उसी कार्य के लिए, ठेकेदार ने कार्य को पूरा करने के लिए एक पूरक समझौता किया था। निर्धारित समय

सीमा से अधिक दर पर। इससे यह भी स्पष्ट होता है कि ठेकेदार ने मध्यस्थता खंड में दिए गए प्रावधान के अनुसार मध्यस्थ की नियुक्ति का अनुरोध करने के अपने कथित अधिकार का त्याग कर दिया था। उन्होंने मध्यस्थता खंड का हवाला देते हुए बताया कि नोटिस प्राप्त होने के 30 दिनों के भीतर प्रबंध निदेशक द्वारा मध्यस्थ की नियुक्ति अनिवार्य है। यदि मध्यस्थ की नियुक्ति नहीं होती है, तो ठेकेदार के पास तीन नामों का पैनल भेजने का विकल्प है, जिसमें से मध्यस्थ की नियुक्ति की जानी है। उन्होंने तर्क दिया कि पूरक समझौते के बाद, वर्ष 1979 में ठेकेदार द्वारा की गई तथाकथित मांग पर पंचाट लेने का कोई प्रश्न ही नहीं उठता। किसी भी स्थिति में, उन्होंने कहा कि ठेकेदार को धारा 20 के तहत न्यायालय में जाना चाहिए था या उसे हुए नुकसान की राशि की मांग करने वाले नोटिस की तारीख से तीन साल के भीतर मध्यस्थता की मांग करनी चाहिए थी। इसके विपरीत, उत्तरदाता के विद्वान अधिवक्ता ने कहा कि मामले को मध्यस्थ के पास भेजने का कारण केवल 1983 में उत्पन्न हुआ, जब उत्तरदाता ने ठेकेदार के दावे को अस्वीकार कर दिया।

इस विवाद का निर्णय करने के लिए, हम सर्वप्रथम *उड़ीसा राज्य एवं अन्य बनाम दामोदर दास* [1996] 2 एससीसी 216 में इस न्यायालय के निर्णय का उल्लेख करेंगे, जिसमें न्यायालय ने यह माना है कि परिसीमा अधिनियम, 1963 की धारा 3 को परिसीमा के प्रश्न पर विचार करने का अधिकार प्राप्त है, चाहे वह दलील में उठाया गया हो या नहीं। न्यायालय ने कंडिका 5 में निम्नानुसार कहा:

> "*एंथनी वाल्टन द्वारा लिखित रसेल ऑन आर्बिट्रेशन (19वां संस्करण) पृष्ठ 4-5* में कहा गया है कि मध्यस्थता शुरू करने की परिसीमा अवधि उस तारीख से शुरू होती है जिस दिन "मध्यस्थता का हेतुक" उत्पन्न हुआ था, यानी उस तारीख से जब दावेदार ने पहली बार विवाद पर कार्रवाई का अधिकार या मध्यस्थता की मांग करने का अधिकार प्राप्त किया था। *किसी मध्यस्थता के प्रारंभ होने की परिसीमा अवधि उस तिथि से शुरू होती है जिस पर, यदि मध्यस्थता खंड न होता, तो वाद-हेतुक उत्पन्न होता:*
>
> "जिस प्रकार मुकदमों के मामले में, कारण उत्पन्न होने की तिथि से एक निश्चित संख्या में वर्षों की समाप्ति के बाद दावा नहीं किया जा सकता है, उसी प्रकार मध्यस्थता के मामले में भी, दावा उत्पन्न होने की तिथि से एक निश्चित संख्या में वर्षों की समाप्ति के बाद दावा प्रस्तुत नहीं किया जा सकता है।"

> यदि मध्यस्थता खंड में यह प्रावधान भी हो कि किसी भी ऐसे मामले के संबंध में, जिसे मध्यस्थता के लिए संदर्भित करने पर सहमति हुई है, पंचाट दिए जाने तक कोई वाद उत्पन्न नहीं होगा, तब भी समय उस सामान्य तिथि से गिना जाएगा जब मध्यस्थता खंड न होने की स्थिति में वाद उत्पन्न होता।

न्यायालय ने पूर्व के फैसले *पंचू गोपाल बोस बनाम कलकत्ता बंदरगाह के न्यासी बोर्ड,* [1993] 4 एससीसी 338 का भी उल्लेख किय, जहां न्यायालय ने निम्नलिखित टिप्पणी की:

> "मध्यस्थता शुरू करने की परिसीमा अवधि उस तारीख से शुरू होती है जिस दिन मध्यस्थता का कारण उत्पन्न हुआ, यानी उस तारीख से जब दावेदार ने पहली बार या तो कार्रवाई का अधिकार प्राप्त किया या संबंधित विवाद पर मध्यस्थता की मांग करने का अधिकार प्राप्त किया।
>
> *इसलिए, मध्यस्थता शुरू करने की परिसीमा अवधि उस तारीख से शुरू होती है जिस तारीख को, यदि मध्यस्थता खंड न होता, तो कार्रवाई का कारण उत्पन्न होता।* जिस प्रकार मुकदमों के मामले में, कारण उत्पन्न होने की तिथि से एक निश्चित संख्या में वर्षों की समाप्ति के बाद दावा नहीं किया जा सकता है, उसी प्रकार मध्यस्थता के मामले में भी, दावा उत्पन्न होने की तिथि से एक निश्चित संख्या में वर्षों की समाप्ति के बाद दावा प्रस्तुत नहीं किया जा सकता है।"

उपरोक्त अनुपात को वर्तमान मामले में लागू करने पर, विवाद को मध्यस्थ के पास भेजने का अधिकार 1979 में तब उत्पन्न हुआ जब ठेकेदार ने राशि की मांग करते हुए नोटिस दिया और अपीलार्थी की ओर से कोई जवाब नहीं आया और राशि का भुगतान नहीं किया गया। उक्त राशि की वसूली का कारण नोटिस की तारीख से उत्पन्न हुआ। ठेकेदार अनिश्चित काल तक प्रतीक्षा नहीं कर सकता और उसे परिसीमा अवधि के भीतर कार्रवाई करनी होगी। वर्तमान मामले में, पक्षों के बीच एक पूरक समझौता था। पूरक समझौते में कहीं भी यह प्रावधान नहीं है कि ठेकेदार के क्षतिपूर्ति की वसूली के तथाकथित अधिकार को किसी भी तरह से सुरक्षित रखा गया है। इसके विपरीत, इसमें विशेष रूप से उल्लेख किया गया है कि ठेकेदार को अभी भी काम का एक महत्वपूर्ण हिस्सा पूरा करना बाकी था, जिसका विवरण समझौते की अनुसूची में दिया गया है, और ठेकेदार ने समझौते में उल्लिखित शर्तों और नियमों पर उक्त शेष कार्य को पूरा करने पर सहमति व्यक्त की है। अब, इन परिस्थितियों में, ठेकेदार परिसीमा अवधि के बाद विवाद को मध्यस्थ के पास भेजने के लिए प्राधिकरण या न्यायालय से संपर्क नहीं कर

सकता। मध्यस्थता अधिनियम की धारा 37 में विशेष रूप से प्रावधान है कि भारतीय परिसीमा अधिनियम के प्रावधान लागू होंगे। मध्यस्थताओं के संबंध में, जैसा कि वे न्यायालय में कार्यवाही पर लागू होती हैं।

उत्तरदाता के विद्वान अधिवक्ता ने इस न्यायालय के फैसले पर भरोसा जताया। *मेजर (सेवानिवृत्त) इंदर सिंह रेखी बनाम दिल्ली विकास प्राधिकरण* [1988] 2 एससीसी 338 में यह तर्क दिया गया कि दावे को संदर्भित करने का कारण तभी उत्पन्न होता है जब अपीलार्थी उत्तरदाता के द्वारा दावा किए गए हर्जाने की वसूली के अधिकार पर विवाद करता है। उक्त मामले में, न्यायालय ने टिप्पणी की है कि कार्य पूर्ण होने पर, भुगतान प्राप्त करने का अधिकार स्पष्ट रूप से उत्पन्न होगा, लेकिन चूंकि अंतिम बिल तैयार नहीं किए गए थे और जब 28 फरवरी, 1983 को दावा किया गया था और भुगतान नहीं किया गया था, तो वाद हेतुक उस तारीख से उत्पन्न हुआ। उस मामले में, धारा 20 के तहत आवेदन जनवरी 1986 में दायर किया गया था। न्यायालय ने यह भी टिप्पणी की कि:

> "यह सत्य है कि पक्षकार अनुस्मारक लिखकर या अनुस्मारक भेजकर वाद हेतुक की उत्पत्ति को स्थगित नहीं कर सकता, लेकिन जहां बिल अंतिम रूप से तैयार नहीं हुआ है वहां दावेदार द्वारा किया गया दावा ही वाद हेतुक की उत्पत्ति है। विवाद तब उत्पन्न होता है जब कोई दावा हो और उस दावे का खंडन या अस्वीकृति हो। अधिनियम की धारा 8 के तहत मध्यस्थ की नियुक्ति या धारा 20 के तहत संदर्भ के लिए विवाद का अस्तित्व आवश्यक है। *आर.एस. बाचावत द्वारा लिखित मध्यस्थता कानून का पहला संस्करण, पृष्ठ 354 देखें।* विवाद तभी उत्पन्न हो सकता है जब एक पक्ष दावा प्रस्तुत करे और दूसरा पक्ष उसे किसी भी आधार पर अस्वीकार कर दे। मात्र भुगतान करने में विफलता या निष्क्रियता से विवाद के अस्तित्व का अनुमान नहीं लगाता। विवाद में दावे या अनुरोध को स्वीकार न करने की सकारात्मक अभिव्यक्ति और अस्वीकृति का अभिकथन शामिल होता है, न कि मात्र निष्क्रियता। *किसी विशेष मामले में विवाद उत्पन्न हुआ है या नहीं, यह मामले के तथ्यों और परिस्थितियों से ही पता लगाया जा सकता है।*"

जैसा कि ऊपर बताया गया है, वर्तमान वाद में, 29 अगस्त, 1979 को ठेकेदार ने कुछ दावे करते हुए पत्र लिखा। इसके बाद, 20 दिसंबर, 1980 को पूरक समझौता निष्पादित किया गया। उस समझौते में कहीं भी यह उल्लेख नहीं है कि ठेकेदार के कथित नुकसान या क्षति

की भरपाई के अधिकार को बरकरार रखा गया है। इसके विपरीत, उसने दूसरे समझौते में निर्धारित समय के भीतर कुछ अधिक दर वसूल कर काम पूरा करने पर सहमति व्यक्त की है। ठेकेदार ने कार्रवाई का कारण उत्पन्न होने की तिथि से, यानी 29 अगस्त, 1979 से तीन वर्षों के भीतर कोई संदर्भ नहीं मांगा है। केवल 1985 में जब दूसरे समझौते के संबंध में विवाद उत्पन्न हुआ, तो उत्तरदाता ने 2 दिसंबर, 1985 को एकमात्र मध्यस्थ नियुक्त करने के लिए नोटिस दिया। एकमात्र मध्यस्थ को संदर्भ की व्यवहार्यता, रखरखाव और वैधता के संबंध में विशिष्ट आरक्षण के साथ नियुक्त किया गया था, साथ ही इस आधार पर भी कि दावा परिसीमा अवधि द्वारा वर्जित था और यह संविदा की सामान्य शर्तों के अनुसार अपवादित मामलों से संबंधित था। इन तथ्यों से स्पष्ट है कि नवंबर-दिसंबर 1985 में मध्यस्थ के समक्ष किया गया दावा स्पष्ट रूप से परिसीमा अवधि से बाधित था। उत्तरदाता द्वारा 3 सितंबर, 1983 को लिखे गए पत्र में उत्तरदाता के नुकसान या क्षति के दावे को अस्वीकार करने से कोई नया वाद उत्पन्न नहीं होता। उस तिथि को उक्त राशि की वसूली के लिए वाद अवधि परिसीमा अधिनियम, 1963 के अनुच्छेद 137 के तहत निर्धारित तीन वर्ष की अवधि से बाधित थी। परिसीमा अधिनियम की धारा 3 के तहत मध्यस्थ का यह कर्तव्य था कि वह दावे को अस्वीकार कर दे क्योंकि यह स्पष्ट रूप से परिसीमा अवधि से बाधित था।

वर्तमान मामले में, उपरोक्त निष्कर्षों के मद्देनजर, ब्याज अधिनियम, 1978 के लागू होने से पहले ब्याज दिए जाने या अनिर्धारित क्षति पर ब्याज न दिए जाने के संबंध में विवाद पर चर्चा करना आवश्यक नहीं है। साथ ही, यह चर्चा करना भी आवश्यक नहीं है कि 1977 में निष्पादित पहले समझौते में निहित मध्यस्थता समझौता दिसंबर, 1980 में निष्पादित दूसरे समझौते के बाद भी प्रभावी रहेगा या नहीं।

परिणामस्वरूप, अपील खर्च सहित स्वीकार की जाती है। पटना उच्च न्यायालय, रांची न्यायपीठ द्वारा विविध अपील सं. 621/1990 में पारित आदेश और अधीनस्थ न्यायाधीश, प्रथम न्यायालय, चास द्वारा मध्यस्थता वाद सं. 28/1988 में दिनांक 2 अप्रैल, 1990 को पारित आदेश को अभिखंडित और अपास्त किया जाता है।

वी.एस.एस. अपील स्वीकृत की जाती है।

खंडन (डिस्क्लेमर)- स्थानीय भाषा में निर्णय के अनुवाद का आशय, पक्षकारों को इसे अपनी भाषा में समझने के उपयोग तक ही सीमित है और अन्य प्रयोजनार्थ इसका उपयोग नहीं किया जा सकता। समस्त व्यवहारिक, कार्यालयी, न्यायिक एवं सरकारी प्रयोजनार्थ, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रमाणिक होगा साथ ही निष्पादन तथा कार्यान्वयन के प्रयोजनार्थ अनुमन्य होगा।